निकुंज

(काव्य संग्रह)

कुलवंत सिंह

निकुंज

(काव्य संग्रह)

कुलवंत सिंह

सर्वाधिकार सुरक्षित

रचनाकार : कुलवंत सिंह

संस्करण : आनलाइन

शुल्क : नि:शुल्क

NIKUNJ

By : **K**ULWANT **S**INGH

निकुंज / 3

समर्पित

मातृ देवो भव।
पितृ देवो भव।
आचार्य देवो भव।

मेरी यह काव्यांजलि

समर्पित है -

स्वर्गीय माताजी
श्रीमती शीलावंती जी को

स्वर्गीय पिताजी
श्री करतार सिंह जी को

एवं

मेरे समस्त पूज्य आचार्यों को

कवि परिचय : कुलवंत सिंह

जन्म तिथि : 11 जनवरी
जन्म स्थान : रूड़की, उत्तरांचल
प्राथमिक शिक्षा : सरस्वती शिशु शिक्षा मंदिर
करनैलगंज गोंडा (उ.प्र.)
हाईस्कूल /इंटरमीडिएट: ब्राम्हण संस्कृत विद्यालय, रूड़की

उच्च शिक्षा : बी टेक, आई. आई.टी., रूड़की
(रजत पदक एवं 3 अन्य पदक)
पी एच डी : मुंबई युनिवर्सिटी

पुस्तकें : 1 - परमाणु एवं विकास (अनुवाद)
2 - विज्ञान प्रश्न मंच

काव्य पुस्तकें : 1 - निकुंज (काव्य संग्रह)
2 - शहीद-ए-आजम भगत सिंह (काव्य)
3 - चिरंतन (काव्य संग्रह)
4 - क़ज़ा (ग़ज़ल संग्रह एवं अन्य)
5 - इंद्रधनुष (बाल गीत संग्रह)

रचनाएं प्रकाशित : साहित्यिक पत्रिकाओं, परमाणु ऊर्जा विभाग, राजभाषा विभाग, केंद्र सरकार की विभिन्न गृह पत्रिकाओं, वैज्ञानिक, विज्ञान, आविष्कार, अंतरजाल पत्रिकाओं में अनेक साहित्यिक एवं वैज्ञानिक रचनाएं

पुरस्कृत : काव्य, लेख, विज्ञान लेखों, विभागीय हिंदी सेवाओं के लिए एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा पुरूस्कृत

1. काव्य भूषण सम्मान –कवर्धा छत्तीसगढ
2. काव्य अभिव्यक्ति सम्मान –दृष्टि गुना (मप्र)
3. भारत गौरव सम्मान – ऋचा कटनी (मप)

4. राष्ट्रीय प्रतिभा सम्मान –विश्व स्नेह समाज इलाहाबाद
5. बाबा आंबेडकर मेडल दिल्ली
6. विभागीय सम्मान राष्ट्रभाषा गौरव पुरूष्कार

सेवाएं : हिंदी समर्पित एवं 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद'' से संबंधित
संपादन : 'वैज्ञानिक' त्रैमासिक पत्रिका
विज्ञान प्रश्न मंचों का हिंदी मे परमाणु ऊर्जा विभाग एवं अन्य संस्थानों के लिए अखिल भारत स्तर पर आयोजन
क्विज मास्टर (हिंदी)

संप्रति : वैज्ञानिक अधिकारी,पदार्थ संसाधन प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई-400085

निवास :13 A,धवलगिरि बिल्डिंग, अणुशक्तिनगर, मुंबई-94
फोन : 022-25595378 (Office)
ईमेल : kavi.kulwant@gmail.com

भूमिका

मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है - काव्य। गद्य में व्यक्त सुदृढ़, तर्कसंगत एवं प्रवाहपूर्ण विचार भी मानव-मन की विभिन्न परतों को दर्शाने में प्रायः अपर्याप्त होते हैं। भावाभिव्यक्ति माध्यम को काव्य एक नयी दिशा ही प्रदान नही करता अपितु आंतरिक संवेदनाओं को शब्दों में ढ़ाल खूबसूरती से अभिव्यक्त भी करता है। कभी कभार हमें यह लगता है कि विज्ञान एवं कविता दोनो की दिशा ही विपरीत है क्योंकि विज्ञान तर्क पर आधारित है जबकि कविता तर्क को नकारती है।

श्री कुलवंत सिंह अनसंधान धातुकर्मी, 'भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र' द्वारा रचित "निकुंज" काव्य संग्रह देखकर मुझे वास्तव में अतीव प्रसन्नता हुई। इसमें कोई संदेह नही कि धातुओं का अध्ययन एक रूखा विषय है, जिसमें हृदय की कोई आवश्यकता नही होती जबकि काव्य पूरी तरह से हमारे हृदय-भावों से जुड़ा होता है।

इसमें कोई अतिशयोक्ति नही है कि धातुविज्ञान के अनुसंधानकर्ता के पास भी दिल है और यदि उसने अपने भावों को अभिव्यक्त करने का माध्यम कविता चुना है तो इसमें कुछ भी असामान्य नही है।

श्री कुलवंत सिंह ने आदर्शों, सामाजिक, एवं मानवीय मूल्यों के प्रति अपने भाव व्यक्त किय हैं। साथ ही राष्ट्र के विकास एवं राष्ट्र प्रेम की भावनाओं को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस प्रकार कवि ने संवेदनाओं एवं तर्क दोनो को ही काव्य रचना का माध्यम बनाया है। अपने चारों ओर के समाज एवं विश्व के बारे में कवि ने अपने भावों एवं अनुभवों को सच्चाई के साथ व्यकत किया है। इन कविताओं में विचारों की सरलता एवं भाषा प्रवाह ने मुझे सर्वाधिक प्रवाहित किया।

मैं कामना करता हूं कि भविष्य में भी समय के साथ जैसे वह परिपक्व होते हैं, इसी प्रकार अपनी संवेदनाओं को काव्य रचना के द्वारा मुखरित करते रहेंगे।

मंगलकामनाओं सहित

डॉ. श्री कुमार बनर्जी
पूर्व निदेशक, 'भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र'
मुंबई 400085

अपनी बात

एक वैज्ञानिक का साहित्य की विधा में प्रयत्न! कहीं यह अनाधिकार चेष्टा तो नहीं? शायद नहीं। ऐसी चेष्टाएँ तो पहले भी बहुत बार हो चुकी हैं, और होती ही रहेंगी। क्योंकि व्यक्ति सर्वप्रथम व्यक्ति होता है - संवेदनाओं से परिपूर्ण, अनुभूतियों से सराबोर, भावनाओं से ओतप्रोत। उसका व्यवसाय याँ रोजी-रोटी का साधन तो बाद में आता है। यही मानव कभी खिलखिलाकर हंसता है, तो कभी परिस्थितिवश आंसू भी बहाता है, कभी बेबसी में छटपटाहट महसूस करता है तो कभी इंद्रधनुषी झूले पर हिलोरें भी लेता है। मानव-मन की इन्हीं संवेदनशील अनुभूतियों को जब कोई हृदय से अनुभव कर पंक्तियों के रूप में कागज पर उतारता है तो शायद कविता का जन्म होता है। कविता मात्र कुछ पंक्तियाँ नहीं होतीं, बल्कि इसके पीछे छुपे होते हैं - कुछ 'कहे' और बहुत कुछ 'अनकहे' भाव! यही बहुत कुछ अनकहे भाव जब कविता पढ़ने वाले के सम्मुख आ खड़े होते हैं याँ उसके हृदय को उद्वेलित करते हैं ता कविता की रचना सार्थक हो उठती है।

पारिवारिकता, आत्मीयता, सामाजिक एवं मानवीय मूल्य, राष्ट्रीय भावना, भारतीय संस्कृति, बुजुर्गों का आदर सत्कार मेरे आदर्श हैं। इन्हीं मोतियों से मेरे एक सामान्य, सरल, भावुक मन ने एक माला पिरोने का प्रयत्न किया है। इन संवेदनशील अनुभूतियों एवं भावनाओं के संप्रेषण में मैं कहाँ तक सफल हो पाया हूँ यह तो "निकुंज" के प्रबुद्ध पाठक ही तय कर सकते हैं याँ फिर साहित्य की इस विधा के विद्वान एवं स्तंभ। मेरा तो यह प्रथम प्रयास है जिसमें मैने अपनी विविध काव्य रचनाओं को "निकुंज" के माध्यम से आप तक पहुँचाने का प्रयास किया है। इसमें अवश्य ही त्रुटियाँ होंगी, शायद लय-बद्धता का भी अभाव महसूस होगा, कुछेक जगह शब्द संयोजन भी शायद मानक न लगें किन्तु साहित्य के पारखियों एवं प्रबुद्ध पाठकों की समीक्षाओं की मुझे प्रतीक्षा रहेगी

एवं इस विधा के विद्वानों से सीखने की ललक। त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाकर आप मेरा उपकार ही करेंगे। आपके कहे कुछ शब्द (अथवा आलोचनाएँ) मेरे काव्य की गुणवत्ता को निखारने का ही कार्य करेंगे।

अब मैं आभार व्यक्त करना चाहता हूँ - सर्वप्रथम 'भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र' के निदेशक डा. श्रीकुमार बनर्जी जी का जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय निकालकर "निकुंज" की भूमिका लिखी। मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ लेखक, कवि एवं वैज्ञानिक श्री देव दत्त बाजपेयी जी का जिन्होंने "निकुंज" का मंगलाचरण लिखा और साथ ही काव्य सुधार के लिये बहुत से सुझाव भी दिये। मैं आभार व्यक्त करता हूँ -"कथाबिंब" के मुख्य संपादक डा. माधव सक्सेना जी का जिन्होंने न ही केवल "निकुंज" पर समीक्षात्मक प्रतिक्रिया दी अपितु टंकण में हुई मात्रात्मक त्रुटियों को ओर भी ध्यान दिलाया। मैं आभारी हूँ मेरे भ्राता तुल्य कवि - श्री विपुल सेन एवं परम मित्र श्री जय प्रकाश त्रिपाठी तथा आचार्या डा जयवंती डिमरी का जिन्होंने "निकुंज" पर समीक्षात्मक सम्मतियाँ देकर "निकुंज" को एक सार्थक प्रयास बनाया।

कुलवंत सिंह

मंगलाचरण

"निकुंज" युवा रचनाकार श्री कुलवंत सिंह का रचना संसार है। इस काव्य संग्रह को पढ़ने का सुअवसर मुझे मिला। इन रचनाओं में एक प्रतिभाशाली व्यक्ति के चिन्तन और मननशील बुद्धि की उन्मेषशील बानगी देखने को मिली तो यौवन के उल्लास और तलाश की बेचैनी भी दिखाई दी। विविध संदर्भों में बिखरते प्रश्न ओर सिमटते समाधान के साथ-साथ रचनाकार ने अपने पक्ष को बखूबी व्यक्त किया है।

"निकुंज" वस्तुत: अन्तर्मन में जाग्रत भावों का ऐसा प्रकाश पुंज है जिसमें अनुभूतियों की एक एक किरन बड़े यत्न से संजोई गई है। यह काव्य संग्रह कोमल भावनाओं की विविधता का मनोहारी इंद्रधनुष है - एक ओर मातृभूमि भारत के प्रति देशभक्ति एवं शहीदों का पुण्यस्मरण है वहीं दूसरी ओर समाज के प्रति निष्ठा एवं सामाजिक उत्थान का प्रयोजन भी है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जहाँ सूफियाना अन्दाज है तो वहीं श्रंगार रस से ओतप्रोत शब्दचित्र भी हैं। प्रकृति के सौन्दर्य वर्णन के साथ साथ 'प्रदूषण' जैसी जीवन से जुड़ी विषमताओं का उल्लेख भी है। ज्योत्स्ना रंजित निशा में विरह वेदना की व्यथा कथा के साथ साथ प्रियतम से मिलने का संपूर्ण एवं सात्विक आनंद भी समाहित है।

'भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र', मुंबई में सेवारत श्री कुलवंत सिंह एक वैज्ञानिक अभियंता हैं जिन्होने एक ऐसी धारणा को झुठला दिया कि आज के इस मशीनी युग में वैज्ञानिक अभियंता संवेदना शून्य होते हैं। हिंदी साहित्य जगत की बहुचर्चित कथा एवं उपन्यास लेखिका स्मृतिशेष "शिवानी" से मिलने का सौभाग्य मिला तो उन्होने मुझसे कहा था कि परमाणु ऊर्जा विभाग से संबद्ध वैज्ञानिकों एवं अभियंताओं दवारा हिंदी में लिखे गए लेख, काव्य रचनाऐं उन्होने पढ़े हैं। विज्ञान एवं साहित्य के इस गंगा जमुनी मिलन से उन्हें अत्यंत सुखद आश्चर्य हुआ। किसी कवि की एक

पंक्ति भी कह डाली - "गीत लिखने के लिये मौसम नहीं मन चाहिये!"

पद्य, गीत कविताओं के नियमों को लांघते हुए किन्तु प्रवाह पूर्ण रचनाऐं उतनी ही सहज-सरल हैं कि जैसा उनका सहज सरल व्यक्तित्व! बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री कुलवंत सिंह की रचनायें सार्थक एवं मर्मस्पर्शी हैं।

"निकुंज" महज एक काव्य संग्रह ही नहीं बल्कि एक दर्पण है जिसमें अन्तर्मन के भावों के प्रस्तुतीकरण में सरलता, स्वच्छन्दता एवं ईमानदारी परावर्तित होती परिलक्षित है।

मैं ऐसे विवेकशील युवा रचनाकार को बधाई देता हूँ और उनके काव्य स्वरों का मंगलाचरण कर सफलताओं की कामना करता हूँ। श्री कुलवंत सिंह की भेंट चार दाहे -

शाबासी मैं दे रहा, बन्धु, मित्र कुलवंत
पद्य आपके यूँ लगे, जैसे खिले बसंत

कविता लेखन से हुआ, जिसका गहन लगाव
खुशी खुशी जीवन जिये, बाँटे वह सदभाव

अभिलाषा है आपकी, लिखे लेखनी खूब
नित्य भाव उपजा करें जैसे कोमल दूब

वैज्ञानिक यदि कवि बने मणि कांचन संयाग
ज्ञान और संवेदना - कैसा सफल प्रयोग !

देवदत्त वाजपेयी
सेवानिवृत्त वैज्ञानिक अधिकारी
भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र
मुंबई - 400085

अनुक्रमणिका

1. आत्मज्ञान 16
2. नमन 17
3. माली 19
4. जय जवान जय किसान जय विज्ञान 20
5. भारत 22
6. राष्ट्र 23
7. बलिदान 24
8. शहीद 25
9. अनेकता में एकता 26
10. देश के दुश्मन 27
11. स्वर्ण जयंती 28
12. कलम 31
13. परिवर्तन 32
14. आदर्श 33
15. मानव-जीवन 34
16. खोना 35
17. कल्पना 36
18. विसंगतियां 37
19. प्रेरणा 38
20. दिशा 39
21. लड़ाई 40
22. जिंदगी 41
23. नई दुनिया 43
24. मैने देखा 44
25. बापू फिर न आना इस देश में 47

26. संघर्ष 49
27. मुआवजा 52
28. रिश्ते 54
29. अनुकंपा 55
30. बचपन 56
31. समाजसेवा 57
32. प्रशस्ति पत्र 58
33. युवावर्ग 59
34. हिंदी 60
35. दिशा विहीन समाज 61
36. होली आयी रे 62
37. अल्ट्रासाउंड 64
38. महाप्रदूषण 65
39. परमाणु-ऊर्जा 67
40. खुशहाली 69
41. संगति 71
42. बाल हृदय 72
43. वजूद 73
44. नारी 74
45. संभव - असंभव 75
46. अच्छाई और बुराई 76
47. आत्मा और परमात्मा 77
48. मुस्कुराना 78
49. निर्झर 80
50. सूर्यास्त 82
51. ईश 83

52. नींद 84
53. पहचान 85
54. अंतिम सांसे 86
55. निरूद्देश्य जीवन 87
56. जीवन का लक्ष्य 89
57. कौन 90
58. अपनापन 91
59. अंतर्मन 92
60. 'मैं' और 'तुम' 93
61. आज के युग में 94
62. क्या ऐसा संभव? 95
63. ऐसा भी होता है! 97
64. शून्य : एक शाश्वत सत्य? 98
65. जड़-मानव 99
66. आधुनिक हिंदी कविता 101
67. कविता 105
68. टीस 107
69. अनंत प्रेम 108
70. रूहानी 109
71. प्रीत 110
72. पिया न आये 112
73. क्या हो तुम! 114
74. तुम पास तो आओ 115
75. प्रियतम 116
76. यौवन 118
77. दर्पण देख लिया होता! 119

आत्मज्ञान

मिटाकर अहंकार
करो परोपकार
मिथ्या है संसार
सत्य है परमार्थ।

मिटाकर अंधकार
करो ज्योतिर्मय संसार
हो कीर्ति रश्मियाँ का विस्तार
जीवन है सेवार्थ।

मिटाकर विकार
अर्थ लोभ को नकार
हो जाओ ईश से एकाकार
हो तत्पर ज्ञानार्थ।

मिटाकर मन का मालिन्य
दिलों में प्रेम को निखार
करो सत्य को साकार
हो सेवा निःस्वार्थ।

नमन

कोटि नमन हे भारत!
संस्कृति, वैभव परिपूर्ण
दर्शन, वेद, वेदांत....
आध्यात्म समाहित पूर्ण।

कोटि नमन हे भारत!
संतो, महापुरुषों की जन्मभूमि
राम, कृष्ण, चैतन्य, नानक....
जन्म, कर्म, धर्म, की मर्मभूमि।

कोटि नमन हे भारत!
प्राचीन साहित्य भंडार भरे
तुलसी, सूर, मीरा, कबीर....
जीवन, ज्ञान, प्रेम, सार भरे।

कोटि नमन हे भारत!
सरिताएं हैं देवतुल्य
गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, कावेरी....
पावन धरती उपजाऊ अमूल्य।

कोटि नमन हे भारत!
वीरों की रणभूमि
गुरू गोविंद, शिवाजी, राणा प्रताप....
सर्वत्र न्यौछावर भारतभूमि!

कोटि नमन हे भारत!
बलिदानियों की भूमि
गांधी, भगत, सुभाष, आजाद
तात्या, टीपू, नाना, लक्ष्मी....

इस धरती पर जन्मे
पाया सुख सारा।
इसकी माटी तिलक हमारा
धन्य हुआ है जीवन हमारा।

माली

बहुरंगी ये पुष्प खिलायें,
सुमन-सुरभि बिखरायें,
पुष्पित हो हर कली इतराये,
आओ ऐसा हिंदुस्तान बनायें।

माली बन इस कानन में तत्पर,
मुस्कान बिखेरें हर कुसुम अधर,
सौहार्द्र प्रेम, एकता संजोये,
पुष्पित सुरभित हो हर डर।

मात्सर्य न डगने पाये,
खर पतवार न पनपने पाये,
चलो प्रेम का बिरवा सींचें,
धरा चमन माली बन जायें।

जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान

जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान,

प्राणों की आहुति दे देते, तत्पर सदा जवान,
भारत की इस बलि बेदी पर, कर में ले हथियार,
अगणित अमर जवानों ने बिछा दिये हैं प्रान,
आंच न आने दी भारत पर, छोड़ा सब संसार,
साक्षी है इतिहास, और जग करता सत्कार।
जय जवान, जय जवान, जय जवान।

नव संसाधन मिले, हरियाली छायी देश में,
सहकारिता को बढ़ाया, खुशहाली छायी देश में,
अपनायी नई तकनीकें, कृषि के देश में,
खाद्यानों से परिपूर्ण भंडार भरे देश में,
स्वावलंबी बने हम, निर्यात भी करते हैं।
जय किसान, जय किसान, जय किसान।

विज्ञान में पीछे नहीं अग्रिम चुने देशों में,
संभाव्य किया सब कुछ हमने जो मानव को प्राप्य,
विखंडन कर परमाणु का, असीमित ऊर्जा भंडार,
आर्यभट्ट, रोहिणी, ऐप्पल, इंसेट अंतरिक्ष में साकार,
भयकंपित रखते शत्रु को, नाग, पृथ्वी, आकाश।
जय विज्ञान, जय विज्ञान, जय विज्ञान।

लेकिन क्या है कमी, जो भारत पिछड़ा देश!
करना आत्मचिंतन हमें, देना बंद कर उपदेश,
मुट्ठीभर कुछ राजनेता न बदल सकते परिवेश,
कोसना बंद करें उनको, जब आये आवेश,
हम लाखों बुद्धिजीवियों को वहन करना संदेश।
आज जरूरत हम सब की है, पुकारे भारत-देश।

कोटि-कोटि जन तब होंगे साथ।
बढ़ेंगे आगे, लिये फिर हाथों में हाथ।

भारत

फूंकना है यदि देश मे प्राण,
बनाना है यदि भारत महान,
जीवन में सबके भरना होगा प्रकाश,
मुट्ठी भर सबको देना होगा आकाश।

महलों की चाह नहीं सबको,
एक छत तो देनी होगी सबको,
दो वक्त की रोटी खाने को मिल जाये,
इज्ज़त से इंसान जी पाये।

भिक्षा की नौबत न आये,
रोजगार के अवसर बढ़ायें,
ऐसे संसाधन तो जुटाने हमको,
अग्रणी रखना यदि हमने भारत को।

मानवाधिकारों का हनन न हो,
न्याय मिले समय पर सबको,
कागज पर छपे मात्र शब्द न हों,
यह भी सुनिश्चित करना हमको।

सुख सुविधा के पहुँचे सब साधन,
जीवन में भारत के जन-जन,
तभी निराला भारत होगा,
शक्ति संपन्न भारत होगा।

राष्ट्र

अखण्ड राष्ट्र,
परिपूर्ण राष्ट्र,
आत्म - गौरव,
संपूर्ण व्याप्त!

सत्य - पथ
निश्चल - अडिग
निश्छल - कर्म
निष्काम - भाव!

निर्मल - मन
पावन - विचार
उदार - हृदय
पर - उपकार!

स्नेह - अनुज
संस्तुति - ज्येष्ठ
राष्ट्र - उत्थान
मानव - श्रेष्ठ!

आदर्श जीवन
कर्तव्य प्रेरणा
समान अधिकार
ज्ञान तृष्णा!

समाहित इन गुणों से जिस राष्ट्र के नागरिक,
गौरवान्वित वह राष्ट्र और अभ्युदय हो वह समाज।

बलिदान

जो वीर सहर्ष बलिदान हुए
स्वतंत्रता था उद्देश्य।
उनकी याद मिटे ना दिल से
आओ बनायें ऐसा परिवेश।

स्वर्णाक्षरों में अंकित गाथा
व्यर्थ न हो उनकी अभिलाषा।
फिर 'सोने की चिड़िया' कहलाये
आओ जगायें हर दिल में आशा।

फ़र्ज वो अपना निभा गये
रक्त से सींचा उपवन को।
कर्ज उतारें हम उनका आज
पुष्पित करें हर सुमन को।

शहीद

जो वीर हुए बलिदान,
था उद्देश्य उनका महान।

गले में फाँसी के हार, सीने पे खायी गोलियां,
मौत से ब्याह कर, उठी उनकी डोलियाँ।

वीर बांकुरों ने आजादी की ठानी थी,
छक्के छूटे, दुश्मन को मुंह की खानी थी।

स्वर्णाक्षरों में लिखा गया उनका बलिदान,
ऋणी हर भारतवासी, हृदय पटल अंकित सम्मान।

आजादी तो हमें प्यारी है, सहेज के रखना यारों,
शहीदों को इससे बढ़कर, नहीं श्रद्धांजली प्यारों।

व्यर्थ न हो उनका बलिदान,
कहना नहीं, बनाना है - 'भारत महान'।

अनेकता में एकता

अनेकता में एकता,
यही हमारी विशेषता।
बसती है हर देशवासी में,
एक ही राष्ट्रीयता।

सदियों से जमाने ने
रौंदा इस अपनी को।
मिटा सका न फिर भी
कोई हस्ती अपनी को।

बात है कुछ हममें,
अनेकता में एकता
हर भारतवासी में
यही है विशेषता।

गुजरात से अरुणाचल तक
कश्मीर से निकोबार तक
हम एक हैं
अंतिम सांस तक!

देश के दुश्मन

स्वतंत्रता सेनानी का वह बेटा था,
जाने किस मिट्टी का बना था
एकला ही चल दिया वह
दीवानगी की राह पर।

कहने लगा, 'भ्रष्टाचार को मिटाना है,
देश को मजबूत बनाना है।
एक सूत्र में फिर से पिरोना है,
अखण्ड भारत को फिर आत्म-गौरव दिलाना है।'

लड़ता रहा दीवानगी की हद तक,
लोग देख उसे हंसते जब-तब।
साथ देने न आया कोई उसका,
लेकिन वह डटा रहा, जिगर था उसका।

मगर वो अकेला ही था -
हार गया, सब कुछ गंवा कर भी!
इस 'सिस्टम' के आगे उसकी कुछ न चली,
टूट कर बिखर गया, सजा अपनों से मिली।

आप की लड़ाई थी गोरों से,
जाने पहचाने उन दुश्मनो से।
अपने, पराये, अनजान हाथ,
प्रत्यक्ष, परोक्ष सबका था साथ।

बेटे की लड़ाई थी अपनों से,
अपने ही देश के दुश्मनों से।
भेड़ की खाल मे छिपे भेड़िये,
इनसे भला कैसे जीतिये?

स्वर्ण जयंती

स्वतंत्रता के हुए पचास वर्ष,
आज है हंसी-खुशी उल्लास हर्ष।
बलिदान हुए राष्ट्र पर जो सहर्ष,
संभव हुआ देश का जिससे उत्कर्ष।
गौरवान्वित हम; करते हैं उनको नमन,
सौंपा जिन्होंने हमको यह चमन।
गाँधी, सुभाष, टैगोर का यह सपन,
स्वतंत्र भूमि पर हम लें जनम।
स्वतंत्रता के हुए पचास वर्ष,
आज है हंसी-खुशी उल्लास हर्ष।

वीरों ने खेली थी अपने खून से होली,
अर्पित है उनको हमारी श्रद्धांजली।
रग-रग में बसती थी जिनके स्वतंत्रता,
ऐसे लाल-बाल-पाल को देश है नमन करता।
सन् 1919 बैसाखी में अमृतसर,
रोम-रोम आज भी उठता है सिहर।
जालियांवाला बाग में क्रूर नर संहार
रो उठा था सारा देश अश्रुधार।
स्वतंत्रता के हुए पचास वर्ष,
आज है हंसी-खुशी उल्लास हर्ष।

23 मार्च सन् एकतीस का दिवस,
ब्रिटिश साम्राज्य को किया जिसने विवश।

शहीद हुए सुखदेव, राजगुरू, भगत
अचंभित था ऐसे वीरों पर जगत।
अल्फ्रेड पार्क में शहीद हुए आजाद,
कांप उठी थी परसत्ता सुन उसकी दहाड़।
जन-जन में दहक उठी क्रांति की ललकार,
भारत छोड़ो भारत छोड़ो, थी हर कंठ की पुकार
स्वतंत्रता के हुए पचास वर्ष,
आज है हंसी-खुशी उल्लास हर्ष।

नहीं पायी आजादी यूं ही हमने,
लाखों हैं खोये माँ के लाल हमने।
सींचा है खून से उन्होंने माली बनके,
इस बाग को रखना है हमने संहेज के।
उन्नति के पथ पर है आज देश अग्रसर,
हुए हैं अनेक क्षेत्रों मे हम आत्मनिर्भर।
परमाणु को विखंडित है किया हमने,
अंतरिक्ष मे उपग्रह स्थापित भी किया हमने।
स्वतंत्रता के हुए पचास वर्ष,
आज है हंसी-खुशी उल्लास हर्ष।

दुर्भाग्य लेकिन, देश चल रहा किस राह,
कैंसर भ्रष्टाचार का फैल रहा अथाह।
नेता हुए पथभ्रष्ट, डाकू, गुंडे, मवाली,
जनता का पैसा लूट कर फैला रहे बदहाली।
नित नया घोटाला, यूरिया, हवाला, चारा,
बोफोर्स, सबमैरीन, सेंट किट्स भूला जग सारा।
परतंत्र न रहे पर स्वतंत्र भी न हुए
विडंबना हमारी हम मूक दर्शक बने रहे।

आओ करें आजाद देश को फिर से
आह्वान है दोस्तों हम मिलकर सरफिरे।
स्वतंत्रता के हुए पचास वर्ष,
आज है हंसी-खुशी उल्लास हर्ष।

कलम

धार कलम की पैनी होती
संभलकर उपयोग करें।
दृष्टि बदले, दिशा बदले
समाज को उत्प्रेरित करे।

साहित्य समाज का दर्पण है
किंतु यह दिखलाता राह।
तख्त पलटे, ताज पलटे
कलम दिखाये जब सत्य की चाह।

कलम को है पकड़ा जिसने,
पाया शक्ति से संचरित।
पुष्प खिलें, महक फैले
कलम से हों जब भाव प्रस्फुटित।

दिगभ्रमित हैं क्यों आज हम,
पथ से क्यों हैं भटक गये?
आओ, पंथ बनायें, प्राण जगायें
समाज को नयी दिशा दिखायें।

परिवर्तन

परिवर्तन नियम संसार का,
समय के साथ बहुत बदल गया।
बचपन बीता, यौवन बीता,
बुढ़ापा दहलीज पर आ गया।

परिवर्तन को रोका किसने,
इसको रोक सका है कौन?
यह जीवन का अटल सत्य है -
जो समझे स्वीकारे मौन।

संतो ने जाना समझा,
अंगीकार किया महा प्रयाण।
ज्यों दधीचि ने कर्म-क्षेत्र में
सहस्र त्याग दिये थे प्राण।

लेकिन बदला वह सब कुछ,
जो अनमोल धरोहर थी।
धरा बदली? आकाश बदला?
सूरज बदला? चांद तारे बदले?
यदि नहीं, तो हमारे मूल्य क्यों बदले?

आदर्श

आदर्श गुरू, आदर्श मंत्र,
आदर्श ही हो जीवन का आधार।
आदर्श धन, आदर्श चरित्र
आदर्श ही हों कर्म के आधार।

आदर्शों से है अस्तित्व,
आदर्शों से पहचान मनुष्य की।
आदर्शों से ही अमरत्व,
आदर्शों से ही गरिमा मनुष्य की।

आदर्श बनाते हैं कई,
पर चलता इन पर कोई।
जिसने भी यह पथ अपनाया,
अपने ही अंदर ईश पाया।

मानव–जीवन

संघर्षों का नाम ही जीवन,
फिर इससे घबराना क्यूँ?
नैतिक मूल्यों की नैया,
जीवन का आधार है ज्यूँ!

मूल्यों के संस्कार हैं जिसमें,
विश्व - शांति वो लायेगा।
कर्तव्य निष्ठा का भक्त है जो,
अवनति पतन मिटाएगा।

जीवन दर्शन से आप्लावित,
नैसर्गिक प्रेम जगायेगा।
सामाजिक मूल्यों को अपना,
भाई-चारा फैलायेगा।

हर मानव मन में है बसता,
जिसे ढूंढ़ते बाहर हम।
हममें ही है छिपा कहीं वह,
बस अंतर्मन में झांके हम।

अनुभूति, भावना, कला, प्रेम
से ओत-प्रोत है हर मानव।
सुप्तावस्था में भाव किंतु, क्योंकि,
रोजी रोटी में खोया मानव।

खोना

बहुत कुछ खो चुके हम,
अब और खोना गंवारा नहीं।
जीवन मूल्यों से गिर रहे हम,
नैतिक पतन भी हो, गंवारा नहीं।

संस्कारों से मुख मोड़ रहे हम,
बड़ों का निरादर हो यह गंवारा नहीं।
कर्तव्य निष्ठा से भाग रहे हम,
सत्कर्मों की होली जले, गंवारा नहीं।

स्वार्थ और लोलुपता में फंसे हम,
अपने पराये का भेद न कर सकें, गवारा नहीं।
सांस्कृतिक ह्रास सह चुके हम,
राष्ट्रीय विघटन हमें गंवारा नहीं।

देशभक्ति के बदले मायने देख चुके हम,
पराधीन हों पुनः, यह गवारा नहीं।
आओ खोना बंद करें हम,
देश के पुनर्निर्माण में जुटें।

खुशहाली बिखेरें चारों ओर
हर पुष्प पल्लवित हो, आये नित नयी भोर।

कल्पना

आज जो यथार्थ है,
कल वो नहीं था।
मात्र कल्पना थी
एक स्वप्न था।

किसी ने कल्पना की थी।
और इस कल्पना को
साकार करने का प्रयास भी।
तभी तो यह सब कुछ आज यथार्थ है।

कल सुनहरा भविष्य
यथार्थ हो।
आज हमें कल्पना करनी!
और प्रयत्न करना है -
इस कल्पना को
यथार्थ में बदलने की!!

विसंगतियां

आदिकाल से रही हैं
समाज में विसंगतियां!
घबराओ नही और न सोचो
कि, बिगड़ी हमारी संस्कृतियां!

न बीज गलत, न बोना
न सींचने का परिवेश।
हर आदमी पैदा न हुआ
बनने को दरवेश।

अमिट हमारे मूल्य औ
अमिट हैं - संस्कार।
अपच होने से भी कभी
तन में आ जाता विकार

विकारों की दवा है खोजनी,
करना है समाज का उत्थान।
गिर पड़ चल सकते नहीं,
प्रगति पथ पर यदि बनना महान!

प्रेरणा

तन में संचालित प्रेरणा,
मन में संचारित प्रेरणा,
भावों में प्रवाहित प्रेरणा,
उर में स्थापित प्रेरणा।

उद्देश्य असीम प्रेरणा,
मंजिल समीप प्रेरणा,
सुंदर साथ प्रेरणा,
आशा पास प्रेरणा।

शून्य उद्भाव प्रेरणा,
अनंत विस्तारित प्रेरणा,
धरा धैर्य प्रेरणा,
आकाश स्थायित्व प्रेरणा।

स्वप्न आभास प्रेरणा,
कर्म आधार प्रेरणा,
जीवन जीने की प्रेरणा,
कुछ कर जाने की प्रेरणा।

कुल की प्रेरणा,
कुल उत्थान,
'कुलवंत' की प्रेरणा,
राष्ट्र उत्थान।

दिशा

नई पीढ़ी को दिशा दिखाना,
कर्तव्य हमारा है।
दुनिया सच की राह चले,
फर्ज़ हमें ही निभाना है।

सांस्कृतिक, नैतिक, जीवन-मूल्य,
अनमोल धरोहर अपनी है।
मिली जो हमको पुरखों से,
नवपवर्ग को दे जानी है।

भूले जो हम वशीभूत हो स्वार्थ के,
अहित अपना ही कर जायेंगे।
दिशा हीन होगा समाज,
नामों निशां मिट जायेंगे।

लड़ाई

भाषा, मजहब, जात के नाम,
ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य हो काम,
मक्का, मदीना, तीर्थ हो धाम।
लड़ना ही है क्या इंसान की फितरत?

बांग्ला, द्राविण, उर्दू, हिंदी,
मुस्लिम, हिंदू, इसाई, यहूदी,
सिया, सुन्नी, पहाणी, विदेशी,
लड़ना ही है क्या इंसान की फितरत?

ब्राह्मण-शूद्र-कायस्थ भेद भाव,
कायम समाज पर नासूर घाव,
संकीर्णता का करें परित्याग,
लड़ना ही है क्या इंसान की फितरत?

क्यूँ न हम मिलकर लड़ें
उन दूरियों से जो करती अलग-
मानव को मानव से,
स्वार्थ, लोलुपता, भ्रष्टाचार से,
संत्रास, गरीबी, भुखमरी से,
अशिक्षा, अज्ञान, अंधकार से,
लड़ना ही है क्या इंसान की फितरत?

आओ हम सब मिलकर लड़ें
सामाजिक कुरीतियों से,
प्राकृतिक आपदाओं से,
नैराश्य के अंधेरे से,
जीवन में भरें सबके प्रकाश।

जिंदगी

जब मैं बालक था,
मिट्टी पर विभिन्न आकृतियां-
बनाता और मिटाता था
तब शायद मेरे लिए -
'जिंदगी - बनाना और मिटाना थी'।

जब मैं किशोर हुआ,
घर से भाग निकला,
पेट की क्षुधा थी,
रोटी की समस्या थी,
भिक्षा माँगता, घर-घर भटकता
खाने को रोटी जब पा जाता -
सोचता, 'क्या खोजना और पा जाना ही जिंदगी है?'

जब मैं युवा हुआ,
भिक्षा में खाने को न मिलता
हाँ, सुनने को मिले-व्यंग्य, अपशब्द
जब मुझे भूखे सोना पड़ता
लाख कोशिशों के बावजूद कह उठता -
'क्या बेकार कोशिश का नाम ही जिंदगी है?'

जब मैं होश में आया,
पेट के लिए पापड़ बेले
सैकड़ों रोजगार अपनाए
कठिनाईयों से सामना हुआ

अक्सर मैं बुदबुदा उठता -
'क्या पग पग पर मुसीबतों का नाम ही जिंदगी है?'

लेकिन मैं प्रयत्नशील रहा,
वर्षों पश्चात मैं सफल हुआ -
आज मेरे पास कोठी है, कार है,
सैकड़ों नौकर, सेवादार हैं।
विगत जीवन जब मैं भूल जाता हूँ,
मुलायम गद्दे पर लेटे गुनगुना उठता हूँ -
'जिंदगी कुछ नहीं, बस फूलों की सेज है!

नई दुनिया

आओ खोजें इक नयी दुनिया को।
जिसमें तुम, तुम न रहो, मैं, मैं न रहूँ, बस हम रहें।
जिसमें न हो भ्रष्ट कोई, न भ्रष्टाचार रहे,
रिश्वत, बेईमानी का न नामोनिशान रहे।

आओ खोजें अंधकार में चिराग को -
जिसे जलाकर हम प्रकाश करें,
इस घनी-काली-रात का नाश करें,
इक नवयुग का हम निर्माण करें।

आओ खोजें दुनिया में एक ईमानदार को,
जो न भ्रष्ट, न बेईमान और न रिश्वतखोर हो,
जो न चोर, न लुटेरा या पाकेटमार हो,
यां जिसे इनमें से कुछ न होने का मलाल न हो।

आओ खोजें चीखते शोर में शांति को -
नदियों की कल-कल, पक्षियों के कलरव को,
फूलों में सुगंध, गेहूँ में गुलाब को,
आओ खोजें अपने आपमें इंसान को।

मैंने देखा

किसी अनिष्ट की
आशंका से भयकंपित!
मुट्ठी में बंद किये
एक कागज का टुकड़ा
लम्बे-लम्बे डग भरता
कोई दीन हीन फटे हाल
चला जा रहा था -
'मेडिकल स्टोर' की ओर।
मैंने देखा।

तभी पुलिसमैन एक
कहीं से आया
पहचान कर शिकार को
लपका उसकी ओर
बोला, "अबे उल्लू!
लम्बे-लम्बे डग भरता है
जो नियमों के प्रतिकूल है।
पथ शीघ्र तय करता है!
अगर कहीं कुचला गया
किसी सवारी के नीचे
तो क्रियाकर्म तेरा
कौन करेगा?
यह अपराध है
कानून का उल्लंघन है
मैं तेरा 'चालान' कर दूंगा"।

'चालान' शब्द सुनकर
दुखिया ने हाथ जोड़ दिये
पुलिसमैन के पांव पकड़ लिये।
कातर स्वर में बोला -
"मेरी बूढ़ी माँ बीमार है,
सख्त बीमार है।
उसका एकमात्र सहारा
यह पुत्र, यह अभागा
दवा लेने जा रहा है।
हाथ जोड़ता हूँ, पाँव पड़ता हूँ
मुझे छोड़ दे, तेरा उपकार होगा।"

"बचना चाहता है?
अच्छा चल छोड़ दूंगा!
मेरी दायीं हथेली पर खुजली हो रही है
उसको शांत कर दे,
मेरा आशय समझा यां समझाऊँ तुझे।"
तरेर कर आँखें पुलसिमैन बोला
"समझ गया माई बाप"
मुठी जोर से भींच कर बोला
"लेकिन एक ही पाँच का नोट है"
मुठी खोलकर दिखाते हुए बोला,
"अगर आपको दे दिया
तो... तो... दवा कहाँ से आयेगी?
मेरी माँ मुझसे न छिन जायेगी?
जिसे दवा की सख्त जरूरत है।"
कहते हुए वह कांप रहा था,
"आज छोड़ दे मेरे भाई, मेरे खुदा
फिर कभी ले लेना -

पाँच के बदले दस!
पाँव पड़ता हूँ तेरे"।

लेकिन वह पुलिसमैन
उसकी बात कहाँ सुन रहा था?
वह तो जा चुका था -
अपने हाथ की खुजली शांत करके
उस दीन हीन फटे हाल से
मुड़ा-तुड़ा पाँच का नोट छीन के।
किसी अन्य शिकार की टोह में -
मैंने देखा।

बापू फिर न आना इस देश में

(मुंबई दंगों पर लिखी कविता)

बापू तू क्यूँ आया था इस देश में?
हम तो रक्त के प्यासे रहे हैं,
सदियों से आपस में लड़ते रहे हैं,
एक दूसरे का गला घोटते रहे हैं,
अपने भाईयों का रक्त पीते रहे हैं,
हमारे इस घोर अंधकारमय जीवन में
आशा की किरण बन के
बापू तू क्यूँ आया था इस देश में!

आज भी हम खून बहा रहे हैं -
देखो यह सड़कें, गलियां, चौराहे,
खून से भिगो रहे हैं।
नदियां, नाले, तालाब,
सब खून से भर रहे हैं।
सदा से हम जितने वहशी रहे हैं
आज उससे हम और आगे बढ़ गये हैं।
देखो बापू! बच्चों को भी हम
जिंदा आग में झोंक रहे हैं।

क्या ऐसी दरिंदगी देखी बापू!
हैवानियत भी सर छुपा रही है।
नर-कंकालों के देखो
हमने कितने ढ़ेर लगाये!
बापू, तुम कितने थे सरलमना
हम हिंसक पशुओं के बीच
तू क्यूँ आया था इस देश में?
हमने तो तुझको भी मार डाला!

और क्या बचा इस देश में!

'आदम-खून' हमारे मुँह लग चुका है,
अब इससे ही हमारी प्यास बुझती है,
बहुत स्वाद है, इस रक्त में आपू!
पीने से चाहत और बढ़ जाती है।
भाषा, मजहब, जात के नाम
किसी भी नाम से कत्ल करा्ओ।
आपू, आदम का खून बहाने में,
अब तो हम निपुण हो गये हैं।

कल तक तो हम शहरों में थे,
अब गावों में भी काल बन छा गये हैं।
इधर देखो इंसानियत दम तोड़ रही है,
उधर देखो मानवता की अर्थी उठ रही है।
अपने बंदों की करामात देख-
आज अल्लाह भी रो रहा है!
दासता से मुक्ति दिलाने
आपू, तू क्यूँ आया था इस देश में?

हम तो हमेशा से गुलाम रहे हैं,
आज भी गुलाम हैं-हैवानियत के।
हममें से कुछ लोग नासमझ हैं-
तुमको इस देश में फिर बुला रहे हैं।
लेकिन आपू उनकी मत सुनना,
फिर कभी न आना इस देश में।
आपू, फिर कभी न आना इस देश में।

संघर्ष

'रे पथिक! ये क्षण विश्राम का नहीं,
जीवन का नाम आराम नहीं।
सचेत हर पल रहना तुझे,
आघात-संघर्षों के-अनवरत सहना है तुझे।
अवरुद्ध पथ के कण्टक
अपने ही हाथों बीनने हैं, तुझे।

ये जो गहन अंधकार है
कालिमा रात की,
इसमें स्वर्णिम उषा की
लाली भरनी है तुझे।
उठो स्व-पथ का निर्माण करो,
जीवन-दीपक को ज्ञान-ज्योति प्रदान करो।'

'नहीं! मैं अब कुछ नहीं कर सकता
मैं थक गया हूँ-चलते चलते,
टूट गया हूँ-थपेड़े सहते सहते,
मुझमे अब सामर्थ्य नहीं, कि
अवरुद्ध-पथ के कण्टक बीन सकूँ।
जीवन-दीपक को ज्ञान-ज्योति प्रदान कर सकूँ।
नहीं, मैं अब कुछ नहीं कर सकता।'

'अटोही! क्यों हताश तुम क्यों हो निराश?
यह जीवन है - एक कर्म क्षेत्र

नई दुनिया देखने की यदि है ललक,
तूफान भी सहने पड़ेंगे, थपेड़े ही नही,
खोजने होंगे नवीन अंतरिक्ष।

नया उत्साह नयी प्रेरणा
ऐसे संचरित रहना हर पल तुझे।
यही वह पथ जिस पर हैं -
प्रतीक्षारत रूपसी नवयौवनाएँ
अपने आँचल से तेरे पगों-
की धूल पोंछने को।
अपने कोमल हाथों से
तेरे चरणों के कण्टक निकालने को।
अपनी गोद में तेरे लहूलुहान
चरण समेट लेने को।
तेरी मंजिल-तेरी प्रेयसी,
की बाहों में पहुँचाने को।
देख! तेरी मन्जिल
तेरी प्रेयसी बाहें फैलाए
खड़ी है आतुर, तुझे
अपने में समेट लेने को।'

'हे सचेतक तुम कहाँ हो?
मेरा स्वीकार करो नमन!
हे पथ प्रदर्शक! तुम कहाँ हो?
मैं अब नया जोश, नयी स्फूर्ति
अनुभव कर रहा हूँ।

नहीं चाहता अब विश्राम मैं,
नहीं परवाह मुझे तूफानों की,
न ही परवाह है कण्टकों की।
मिटा दूंगा भोर की लाली से
रात्रि की कालिमा को।
कर दूंगा आप्लावित
सर्वत्र ज्ञानालोक!
हे मेरे प्रेरणादायक!
स्वीकार करो नमन!
पुनः एक बार
पूर्व इसके कि करूँ मैं गमन।'

मुआवजा

एक भूखा निकला घर से
रोटी की तलाश में,
बीवी बच्चों का पेट भरने के ख्याल से,
उसे किसी काम की तलाश थी।
खुद भूखे पेट रहकर
बच्चों को अधपेट खिलाने की चाह थी।

अर्ध-मूर्च्छित सा वह सड़क पार कर रहा था,
कि रोटी के चक्कर में उसे चक्कर आ गया।
इससे पहले कि वह गिरता,
एक कार ने उसे ठोकर मार गिरा दिया।

बेचारा वहीं ढेर हो गया।
भाग्य को कोस रहा था,
भाग्य ने उसे ही उठा लिया।
लोगों ने कार को घेर लिया,
कार वाले को धर दबोचा।
उसे पुलिस के हवाले कर दिया।

मालूम पड़ा उस कार वाले के
आगे-पीछे कोई न था।
न पुलिस थी, न कोई नेता था,
न वह रिश्वत खोर था, न वह बेईमान था।
लोग अचम्भित थे-
'फिर वह कार-वाला कैसे बन गया?'

पुलिस रिश्वत लेकर उसे
छोड़ने से डर रही थी।
क्योंकि जनता अड़ गयी थी,
उसे सजा दिलाने पर तुल गयी थी।

न्याय ने दिया उस पर कहर बरपा
जंजीरों मे ला उसको जकड़ा।
तुम्हारा गुनाह तो स्वयं सिद्ध है,
पूरी पब्लिक सबूत के तौर पर खड़ी है।
तुम्हारे लिए कोई गुंजाइश नहीं है।
फासी का फंदा ही तुम्हारी सजा है।
अब उसे अपनी गलती का अहसास हुआ
नेता या पुलिस को साथ न रखने का पछतावा हुआ।

उस भूखे की पत्नी को जब पता चला,
दौड़ी आयी न्याय की गुहार में,
नंग-धड़ंग बच्चों को साथ ले,
बोली, "जज साहब न्याय कीजिए
हम गरीबों को भी न्याय दीजिए!
जाने वाला तो चला गया,
अब इसकी जान मत लीजिए।
जैसे कारबाइड से भोपाल वालों को मुआवजा दिलाया,
हमें भी कुछ राहत दीजिए,
और इस मुआमले को रफा दफा कीजिए।"

रिश्ते

ज्यों ज्यों आगे बढ़ रहे हैं
हम छोटे होते जा रहे हैं।
बड़े-बूढ़ों की छाया भुला
अपना दायरा सीमित कर रहे हैं।

हर रिश्ते को भुला रहे हैं
रिश्तों मे कुछ तो आड़े आ रहा है।
अपनेपन को कम कर रहे हैं
परिवार का दायरा सीमित कर रहे हैं।

क्या यही हमारी थाती है?
क्या इसी धरोहर पर मान हमें?
क्या यही हमारी भारतीय संस्कृति
जिस पर सदियों से अभिमान हमें?

कहाँ गयी वे भोली मुस्कानें?
हंसते चेहरे, खिलखिलाते ठहाके?
गावों की चौपालें, कस्बों के सम्मेलन,
हंसी, खुशी, त्यौहारों के मौके?

कहाँ गयी माटी की सोंधी खुशबू?
बाल मंडली, झगड़े, लड़कपन?
बड़े बुजुर्गों की बरगद छाया
रिश्तों का मधुरिम अपनापन?

अनुकंपा

हे दुर्गे! (मानव पर) अनुकंपा कर दो!
प्राणहीन तन अनुप्राणित कर दो,
सुषुप्त सद्विचार जागृत कर दो!
संकल्प दृढ़, साहस अदम्य,
उदात्त, सद्भाव अंकुरित कर दो!
हो भारतीय संस्कृति, आस्था अंकुरित
जन-जन हृदय सुवासित कर दो!

हे दुर्गे! अनुकंपा कर दो!
जीवन आदर्श पुनर्स्थापित कर दो,
रुधिर स्वाभिमान का संचरित कर दो!
सत्य, न्याय आत्मसात कर
इनकी रक्षा को जीना सिखला दो!
सद्विचार औ जीवन मूल्यों से
हृदय हर आप्लावित कर दो!

हे दुर्गे! अनुकंपा कर दो!

बचपन

बढ़ते शहरों की भीड़ ने
सुख सुविधा की होड़ ने,
जिंदगी की भाग दौड़ ने,
बचपन छीन लिया है।

सुख समृध्दि के लोभ ने
ऐश्वर्य आराम के मोह ने,
दिग्भ्रमित चकाचौंध ने,
बच्चे का ममत्व छीन लिया है।

बचपन भटक रहा है
ममत्व को खोज रहा है,
माँ के अंक बैठ
फिर झूलना चाह रहा है।

गोदी में लेट किलकारियां
मारना चाह रहा है।
परंतु आह! असंभव यह
माँ के आफिस का समय हो रहा है।

समाजसेवा

समाजसेवा में तल्लीन
खुद को भुलाया
दूसरों के दुखों मे गमगीन
अपना दुख देख न पाया।

दूसरों को हँसाने में व्यस्त,
खुद हँसने का वक्त न पाया,
दूसरों के आँसू पोंछते
अपने आँसू देख न पाया।

दूसरों को मंजिल का
रास्ता दिखाते रहे
भूल कर मंजिल अपनी
अवसर खोते रहे।

दूसरों की खुशियों में
अपनी खुशियां भूल गये,
दूसरे फिर दूसरे थे,
अपने भी दूर होते गये।

प्रशस्ति पत्र

एक अदद प्रशस्ति पत्र
बदल गयी परिभाषाएँ,
सम्मान जिन्हें अपेक्षित
धूमिल होती उनकी आशाएँ।

लालायित पाने को पुरस्कार
जो न थे कभी हकदार,
किये सम्मान पत्र दर किनार
जिनका न था कोई सरोकार।

पाने को प्रशस्ति पत्र
लगी हुई है होड़,
कौन कितने बटोर सकता
'पहुँच' की है दौड़।

हो गयीं संदिग्ध आज
परिभाषाएँ सम्मान की,
बने यह कागज के टुकड़े
बीती बातें अभिमान की।

चाह नहीं इन सबकी उसको
जो सच्चा, समाज सेवी इंसान,
कर्म ही उसका प्रशस्ति पत्र है
कर्म ही उसका सम्मान।

युवावर्ग

युवावर्ग समझता हमेशा
स्वयं को बुद्धिमान,
उस पीढ़ी से
जिससे सीखा उसने सब ज्ञान।

ज्ञान, विज्ञान बहुत पाया
नया बहुत कुछ कर दिखाया,
भौतिक सुख सुविधाएँ जुटाईं
विकास मार्ग भी प्रशस्त कराया

लेकिन जिंदगी के पाठ ऐसे हैं
जो बुजुर्गों से ही समझने हैं,
पढ़ाये जाते नहीं किसी शाला, प्रयोगशाला में
ये बड़ों से ही हमें सीखने हैं।

हिंदी

उठो प्रेमियों हिंदी के
कहाँ चेतना लुप्त तुम्हारी?
समस्त विश्व को आज दिखा दो
है भाषा हिंदी उन्नति की।

किसी कोने में पड़ी उपेक्षित,
हम देख रहे उसकी दुर्दशा।
पूर्व स्वतंत्रता देखी थी जो
कहाँ गयी वह अभिलाषा?

गर्दन पर हिंदी के, अंग्रेजी का
कसता जा रहा दानवी शिकंजा!
हम देख रहे असहाय,
क्यूँ न हमें आती लज्जा?

हो गये निर्लज्ज आज हम
कायर भी कहलायेंगे!
यदि मूक दर्शक बने रहे हम
औ हिंदी को बिसरायेंगे।

स्वर्णाक्षरों में अंकित होगी(?)
गौरव गाथा गायेंगे!
हिंदी प्रेमियों की वास्तविकता
जब इतिहास लिखे जाएंगे!

दिशा विहीन समाज

दिशा विहीन समाज
भ्रष्ट-पथ अग्रसर,
जीवन-मूल्य वंचित,
सत्य स्थापन दुष्कर।

असत्य व्याप्त चतुर्दिश
अन्याय अशेष परिलक्षित,
सरल-सरस-सुंदर-विलोप,
मानवता क्षत-विक्षित।

मानव बदला, बदला समाज,
बदली प्राथमिकताएँ,
सम्मान, सफलता, अलंकरण,
पुरस्कार, योग्यता की परिभाषाएँ।

लुप्त-चिंतन, लोभ-व्याप्त,
तुच्छ मानसिकता, परिवेष ह्रास,
असत्य को आवरण, यथार्थ को प्रमाण,
प्रदूषित विचार, विस्तारित अविश्वास।

जगाओ समाज को झिंझोड़ कर,
करो अत्यावश्यक नवचेतन का संचार,
उपजाओ अनुभूति, सहृदय, संवेदना,
करो स्फूर्ति, स्तुति, स्नेह विस्तार।

मानव हृदय हो पूज्य प्रतिमा,
फलित संघर्ष, प्रयत्न, प्रतिभा,
सार्थक जन्म हो जीवंत प्राण,
पल्लवित हो हर हृदय में भारतीयता।

होली आयी रे!

झनन-झनन नाचो रे, खुशियाँ मनाओ रे,
आज होली फिर से आयी रे!

गुलाल की बहार है, रंगों की फुहार है,
चारों ओर छायी मस्त बहार है।
गलियों में फैला इंद्रधनुषी रंग है,
बच्चे बूढ़े औ जवां, सबमें आज उमंग है।
झनन-झनन नाचो रे खुशियाँ मनाओ रे,
आज होली फिर से आयी रे!

फागुनी हवाओं में दुनिया रंगी है,
चेहरों पे सबके आज उल्लास और हंसी है।
ढोलक की थाप पे थिरके हैं कदम
अब तक थे दूर देखो बने हैं हमदम।
झनन-झनन नाचो रे खुशियाँ मनाओ रे,
आज होली फिर से आयी रे!

गोरी के गाल पे लाल गुलाल है,
पिया अंग लग-लग हुई मालामाल है।
अंखियन से तक-तक मारे पिचकारी है,
संवरिया ने डाला रंग भीगी आज चोली है।
झनन-झनन नाचो रे खुशियाँ मनाओ रे,
आज होली फिर से आयी रे!

बैर भाव भूले सब एक ही पहचान है,
टेसू के रंगों में रंगा जहान है।
धरती नाचे, अंबर नाचे, भंग की तरंग है,
जीवन में सबके आज रंग ही रंग है।
झनन-झनन नाचो रे खुशियाँ मनाओ रे,
आज होली फिर से आयी रे!

अल्ट्रासाउंड

विज्ञान का अन्वेषण
अति विचित्र खोज
अल्ट्रासाउंड्स!

आवाज से परे
ऐसी आवाजें
जो आवाज नहीं करतीं!

खामोशी से जाकर
चुपचाप टकराकर
लौट आती हैं!

दृष्य पटल पर
निर्मित करती बिंब
उसका, जिससे टकराकर आतीं!

हमारी सामाजिक रूढ़ियाँ
संकुचित दृष्टिकोण
करतीं दुरुपयोग इस निकाय का!

पहचानकर भ्रूण
पंगु मानसिकता-गिराकर गर्भ
करती हत्या कन्या भ्रूण की!

महाप्रदूषण

प्रलय की ले आँधी
आया विकराल
महाकाल
महाप्रदूषण!

आततायी मानव
निज स्वार्थ हेतु
फैलाया दावानल-
महाप्रदूषण!

वसुधा, वायु, व्योम
सिंधु, सरिताएँ, सरोवर
संदूषित करता सब
महाप्रदूषण!

पर्वत, पय, पादप, प्रकृति
सुषमा, सृष्टि, वन, वनस्पति
लील रहा सब कुछ
महाप्रदूषण!

पशु, पक्षी, जीव, जलचर
संत्रस्त, आतंकित, भयाक्रांत
नित्य प्रति विस्तारित
महाप्रदूषण!

मानव फँसा चक्रजाल में
रक्त, प्राण, बीज को
संदूषित करता
महाप्रदूषण!

नाना छद्म वेश
कर धारण
नर को प्रताड़ित करता
महाप्रदूषण!

परमाणु-ऊर्जा

अति सूक्ष्म परमाणु
असीमित ऊर्जा भंडार
साध इनकी शक्ति
सृजनात्मकता अपार!

कलुषित मन विचार
दे रूप इसे विकराल,
यह तो ब्रह्मास्त्र है -
जिससे धरा बने पाताल!

अणुओं का यह महाभूत
कल्पित नहीं यथार्थ है,
गर भोतल से निकला
सृष्टि का विनाश है!

हिरोशिमा तो अल्पांश था
अणु अस्त्र भंडार का,
परमाणु अस्त्रागार है -
सौ सौ धरा के नाश का!

संभल मानव
अभी समय है,
विध्वंस तांडव से पूर्व
निद्रा अपनी पूर्ण कर ले!

इस अग्नि बीज को
एकत्र करना बंद कर,
पूर्व इसमें भस्म हो
धरा मानव इतिहास बन ले!

खुशहाली

अंधेरों को रोशनी दो, रोशन हो ये जग सारा,
दिलों को प्रेम दो, प्यार से छलके जग सारा।
मिटा दो अज्ञान को, ज्ञान से दमके जग सारा,
अस्त्र-शस्त्र सब नष्ट कर दो, अमन से रहे जग सारा।

मिटा दो दुश्मनी को, दोस्त हो अपना जग सारा,
फूल खिलाओ हर दिल में, खुशबू से महके जग सारा।
हर बुराई को मिटा दो, खुशियों से चहके जग सारा,
आओ खेलें मिलकर होली, रंगों से भीगे जग सारा।

अंधेरों को रोशनी दो, रोशन हो ये जग सारा,
दिलों को प्रेम दो, प्यार से छलके जग सारा।
उपजाओ अन्न इतना, क्षुधा शांत हो, खाये जग सारा,
नदियाँ नहरें बाँध बनाएँ, निर्मल जल पाये जग सारा।

वृक्ष लगाएँ चारों ओर, हरियाली से भरे जग सारा,
खेत खलिहान सींचें, बालियों से लहराये जग सारा।
घर-घर में मधुरता हो, खुशियों से बहके जग सारा,
धन-धान्य की कमी न हो, दीवाली मनाए जग सारा।

अंधेरों को रोशनी दो, रोशन हो ये जग सारा,
दिलों को प्रेम दो, प्यार से छलके जग सारा।
रिमझिम बरसें बादल, सतरंगी हो ये जग सारा,
मिट्टी की सोंधी खुशबू हो, झूमने लगे जग सारा।

कलरव करते पक्षी हों, कोयल सा कुहके जग सारा,
निसर्ग का संगीत हो, सरगम पे थिरके जग सारा।

मदमाती बयार हो, उन्मत्त हो नाचे ये जग सारा
ढोलक की थाप हो, बैसाखी मनाए जग सारा।

अंधेरों को रोशनी दो, रोशन हो ये जग सारा,
दिलों को प्रेम दो, प्यार से छलके जग सारा।
सत्कर्मों के पुष्प खिलाएँ, बन उपवन महके जग सारा,
कर्म हमारे ऐसे हों, नाज करे जिस पर जग सारा।

संगति

अरुणोदय! फैली हैं रश्मियाँ,
ताम्रवर्णी शोभित नभ।
अठखेलियां करता रवि,
श्वेत-किरण-पुंज कनकाभ।

तपता सूर्य दिन में,
रंग बदले, नीला हो गगन।
संध्या को सूर्यास्त-किरणें,
रंग बदले पल-छिन गगन।

रात्रि में जब सूर्यास्त हो जाता
आकाश हो जाता काला।
संगति का होता असर
कितना ही हो विस्तृत क्षितिज।

बाल-हृदय

शिशु की कोई भाषा न होती,
मौन-मूक बोले बहुत कुछ।
देख हृदय आल्हादित होता,
उसकी मुस्कान अनूठी कुछ-कुछ।

चेहरे पर फैली मासूमियत,
आँखों में चंचलता।
पल में रूठे, पल में माने,
इतराता, इठलाता।

काश! हृदय मानव भी होता,
बालक सा अठखीला।
पल में हँसता, पल में गाता,
पल में छैल छबीला।

न होता मन में वैर भाव,
न ईर्ष्या और विद्वेष।
सुखी होता संसार और
मानव कहलाता दरवेश।

वजूद

पूछता इंसान अपने आपसे!
क्या वजूद उसका
इस संसार में?
क्यों वह आया यहाँ
या फिर लाया गया है?

क्या मंजिल है उसकी
सफर कौन सा तय करना?
जन्म से मरण के बीच
क्या किसी सत्य को खोजना?
पूछता इंसान अपने आपसे!

झाँकता अपने अंदर,
महसूस करता रिक्तता,
न मिलता जवाब उसे,
सारी संभावनाओं को टटोलता!
पूछता इंसान अपने आपसे!

मंदिर, गिरजा, गुरूद्वारे में,
साधु, संत, महात्माओं में,
खोजता उस सत्य को,
किसने पाया उस परम सत्य को?
पूछता इंसान अपने आपसे!

नारी

मानव पर ऋण -
नारी का।
नारी!
जिसने माँ बन -
जन्म दिया मानव को।

ईश्वर पर ऋण -
नारी का।
ईश्वर!
जिसने जन्म लिया हर बार
एक माँ की कोख से।

प्रकृति पर ऋण -
नारी का।
प्रकृति!
जिसने सौंपा यह महान उद्देश्य
नारी के हाथ।

संभव - असंभव

असंभव है संभव!
गर तुमने है ठानी।
सोचा है तुमने -
क्या पाना तुमको?
चिंतन किया है यदि -
कैसे है पाना?

पाओगे अवश्य -
यदि सोचोगे!
चिंतन करोगे!
मनन करोगे!

प्रयत्न से क्या नहीं मिलता?
ढूंढ़ो तो भगवान भी मिल जाता है!
असंभव को संभव
करना तुम्हे ही!
जुट जाओ -
सतत प्रयत्न से,
वो सब कुछ पाने को
जो सोचा तुमने!
और पाओगे तुम।
संभव है, असंभव भी!

अच्छाई और बुराई

जो अच्छाइयां हैं तुममें
सर्वत्र बिखेर दो।
महका दो -
गुलाब की तरह!
जो पाये -
अपना ले।
महक मिले जिसे -
बहक जाये!
बस अच्छाइयां बिखराये।

जो बुराइयां हैं तुममें -
उन्हें समेट लो।
दफ़ा दो -
कफन में!
भुला दो -
चिर निद्रा में!
न उठने पायें,
न दिखने पायें,
न दूसरों को बहका पायें।

आत्मा और परमात्मा

हर इंसान में बसती है एक आत्मा।
पहचान लो - वह आत्मा ही है परमात्मा!
वह जब महके -
सबको खुशबू दे!
जब वह चमके -
सबको रोशनी दे!
जब वह चहके -
सबको मुस्कान दे!
बनकर अवलम्ब -
सबको मनोबल दे!
दीन हीन के -
दुखों को हर ले!
तपती दोपहरी में -
पथिक को छाया दे!
प्यासे को जल,
भूखे को खाना दे!
सत्य की रक्षा -
हो जिसका धर्म,
रुग्ण की सेवा -
हो जिसका कर्म!
पहचान लो -
कर्म ये हैं जिस आत्मा के
वह आत्मा ही है परमात्मा!
जिस मानव में बसती यह आत्मा,
वह मानव ही है परमात्मा!

मुस्कुराना

मैं मुस्कुराना भूल गया।
किये प्रयत्न बहुत, पर विफल हुए,
तरस गया देखना -
अपना मुस्कुराता चेहरा।

ढूंढ़ने लगा आसपास -
कि पढ़ने की कोशिश में,
शायद मिल जाये -
कोई मुस्कुराता चेहरा।

जीवन से लड़ते
गांभीर्य ढ़ोते-ढ़ोते,
मुस्कुराना भूल गया -
शायद इंसानी चेहरा।

काफी प्रयत्नों पश्चात
मैं खुश हुआ -
हंसी सुनाई दी, जा पहुँचा
समीप - जहां था वह प्रसन्न चेहरा।

किंतु वह हंसी फीकी थी
बनावटी - जैसे हो अभिनेता!
दिखावटी - जैसे कोई प्रतियोगिता!
हैरान मैं फिर लगा ढूंढ़ने चेहरा।

तभी अचम्भा हुआ - कैसा सम्मोहन!
सामने थी निश्छल मुस्कान -
पावन, पुनीत, मासूम सी,
हृदय में समाया चेहरा।

अरे! एक बालक नन्हा,
मेरे सामने था खड़ा।
याद आया बचपन अपना -
मुस्कुरा उठा मेरा अपना चेहरा।

निर्झर

जीवन को न बांधिये
नियमों से,
उसूलों से।
जीवन तो इत्र है;
इसको दीजिये -
महकने!

स्वच्छंद-विहग-उड़ान
गगन में दीजिए -
विचरने।
नीड़ में लौटेगा संध्या बेला,
स्वयं ही -
लगेगा चहकने!

बांधने की कोशिश में,
लगेगा यह
तड़पने।
अपराध होगा जकड़ना,
लगेगा तपिश से -
दहकने!

मानवता का होगा कल्याण ,
दीजिए -
राह खोजने।
सत्य की खोज को,

स्व पथ का -
निर्माण करने!

चांद तारों की तरह लगेगा,
आकाश में
चमकने।
जग को देगा प्रकाश ,
दीजिए - जन्म, धर्म, कर्म का
मर्म पहचानने!

सूर्यास्त

डूबते सूर्य को देखा!
सुर्ख लाल,
रक्त आभा।
जैसे-जैसे डूबता -
और रक्तिम
होता जाता।

शायद अहसास दिलाता-
अपनी
उपस्थिति का।
डूबते-डूबते भी
रश्मियां
बिखराता जाता।
महापुरुषों सा
कुछ दे कर जाता।

ईश

यत्र मानव, तत्र मानव,
लक्ष मानव, कोटि मानव,
धरा पर बसते कितने ही मानव।
मानव फिर भी अकेला -
नितांत अकेला!

मानव ने खोजा ईश्वर!
अगम, अगोचर निराकार,
अलख, अपार, निर्विकार,
हृदय ने किया साकार।
मानव अब एकाकी नही
ईश्वर के साथ एकाकार!

नींद

माँ मुझे नींद दे दे।
बालपन की प्रीत दे दे।
अंतराल बीता सोये,
गोद में रख के सर
पलकों को भीगने दे।
माँ, मुझे नींद दे दे।

गीत के वो मधुर बोल,
अधरों से पुन: गुनगुना के
मेरे ख्वाबों को सजा दे।
माँ, मुझे नींद दे दे।

दुनियां को भुला के,
सपनों में आज
मुझे खो जाने दे।
माँ, मुझे नींद दे दे।

थपकियाँ दे-दे के तू,
गा के वो लोरियां
अपने इस लाल को सुला दे।
माँ, मुझे नींद दे दे।

इस जग से बचा के,
वात्सल्य के आँचल में छिपाके
गहरी नींद मे सुला दे।
माँ, मुझे नींद दे दे।

पहचान

तपती दोपहरी,
ये वीरान गलियाँ,
पेड़ों से झड़ते सूखे पत्ते,
गर्म लू के थपेड़े
कचोट जाते हैं ये सब
अकेले में कहीं मुझे।

इन वीरानियों में कहीं -
भटक जाता हूँ मैं
और अपने व्यक्तित्व का
अहसास खो बैठता हूँ मैं!

गलियां अनदेखी लगती हैं
और चेहरे अनचीन्हे,
नि:शब्द, नि:श्वास।
घूर कर देखता हूँ व्यर्थ
शायद पहचानने
की कोशिश में!

अंतर्मन में मेरे एक
टीस सी उठती है -
आह! क्या हो गया है
यह आज मुझे?

अंतिम सांसे

नि:शब्द
रात्रि की नीरवता
स्याह काले अपने दामन में
लपेटे हुए है -
एक टीस।

खो गया है ब्रम्हांड का
समस्त प्रकाश,
रात्रि के आगोश में
सो गया है - थककर
शायद हारकर।

और अपनी विजय की
कुटिल मुस्कान लिए
रात्रि अपने अंधकारमय साम्राज्य
की गहनता में
वृद्धि कर रही है।

जिंदगी कदाचित जिसमें अपनी
अंतिम घुटन भरी
सांसें ले रही है।

निरूद्देश्य जीवन

काया-क्षीण मलिन-मुख
पिचके गाल धँसी आँखें।
किटकिटा रहे दंत पीत
वस्त्र हो रहे तार-तार।
नीर टपका रहे चक्षु
अस्थि पिंजर था वह भिक्षु।
भूख ने हालत उसकी
बेजार बना रखी थी।
एक मात्र अवलम्ब-लाठी
भी उसकी कांप रही थी।
भिक्षापात्र हस्त में उसके
जिसमें थे कुछ छोटे सिक्के।

यह निरूद्देश्य जीवन -
किंतु लालसा जीने की!
आवाज लगाती, 'माई!,
भगवान भला करेगा।
आँखों से झांकती एक आशा,
भिक्षापात्र सम्मुख आ जाता।
कोई कुछ डाल था देता,
और कोई दुत्कार था देता।

आश्रय स्थल-किसी द्वार की चौखट,
कोई चबूतरा या मंदिर की सीढ़ियां।

और टांगे सिकोड़े ठकड़ूं लेटे
रात भर शीत लहर से ठिठुरना।
ऐसे में यदि कोई सूंघता
श्वान भी पास आ जाता
सटकर दोनों झपकी लेते
गर्मी का अहसास थे पाते।
यह निरूद्देश्य जीवन!
किंतु लालसा जीने की।

नवदिवस-भोर-स्वर्णिम उषा
लाती है संदेश नया -
'भूलो कल संवारो आज,
सजाओ नया जीवन का साज।'
किंतु प्रत्येक नव दिवस
उसे कर देता बेबस।
लेकर आता-अपमान दुत्कार
और अकुलाहट भूख की।
इसके साथ ही आती
पाले की एक और सर्द रात
जिसे सोचकर उसे
सिहरन होने लगती
और उसकी हड्डियां
चटखने लगतीं।

जीवन का लक्ष्य

नियमों में जीना चाहते थे,
बेदाग रहना चाहते थे,
बंध कर इन्हीं में रह गये,
क्या था लक्ष्य-भूल गये?

कालिख से बचना चाहते थे,
धूप में रहना चाहते थे,
सच-झूठ के फेरे में पड़ गये,
जीवन का लक्ष्य भूल गये?

कोई उंगली न उठे उन पर,
इसी खयाल में पड़ गये।
जीवन को जीना तो अलग
जीवन क्या है? भूल गये!

कौन

जीवन एक है
प्रश्न अनेक हैं
दुनिया चल रही है,
चलती रहेगी यूँ ही।
इन प्रश्नों को लेकिन सुलझायेगा कौन?

प्रश्न एक है
समाधान अनेक हैं
दुनिया व्यस्त है,
अपने आप में मस्त है।
उचित समाधान लेकिन बताएगा कौन?

समाधान एक है,
सत्य भी एक है,
उद्देश्य एक है,
राह भी एक है,
लेकिन इस राह पर चल कर दिखलायेगा कौन?

अपनापन

एक छोटी सी मुस्कुराहट
भी दिल जीत लेती है।
मुस्कुरा कर तो देखो!

वार्तालाप एक अजनबी को
भी अपना बना देती है।
बात कर के तो देखो!

बड़ा बन माफ करने से
दूरियां मिट जाती हैं।
माफ कर के तो देखो!

गिले-शिकवे भुलाने से
प्यार ही पनपना है।
गले लगा के तो देखो!

अंतर्मन

इंसान किसी की
जब करता आलोचना
परिभाषित करता उसको
या करता उसकी अपमानना।

भूल जाता है वह -
किसी और का नहीं
बखान कर रहा है वह -
अपनी ही मानसिकता का।

दे रहा है वह परिचय
अपनी ही लघुता का
पहचान करा रहा है -
अपने ही अंतर्मन का!

'मैं' और 'तुम'

'मैं' और 'तुम' दो नहीं हैं
ध्यान देना, एक हैं।
'मैं' और 'तुम' से ही बना यह घर,
'मैं' और 'तुम' से ही सजा यह घर।
गौर से देखो-यह घर नहीं,
सजाया था जो-यह स्वप्न वही।

प्रयत्न कर देख लो -
इस घर को तोड़ कर देख लो।
असंभव है अलग करना -
'मैं' को 'तुम' से या 'तुम' को 'मैं' से
क्योंकि 'मैं' और 'तुम' दो नहीं,
ध्यान देना, 'एक' हैं।

आज के युग में

एक 'सच्चे इंसान' को-
आसान है परिभाषित करना
आज के युग में -
उसे 'पागल' कह दो!

एक 'ईमानदार' को
आसान है ढूंढ़ना,
आज के युग में -
लाखों मे एक गिन लो!

एक 'बेबाक' को
आसान है चुप कराना,
आज के युग में -
उस पर झूठे केस चला दो!

एक सरल इंसान को
आसान है खोजना,
आज के युग में -
उसे किताबों मे पढ़ लो!

क्या ऐसा संभव?

सब धर्मों में श्रेष्ठ
मानवता-धर्म।
क्यों न बने इसके मुरीद!
मिटा बाकी सब धर्म!
क्या ऐसा है संभव?

सब कर्मों में श्रेष्ठ
पर-उपकार।
आओ छोड़ें निरर्थक सब
जिनमें न हो परोपकार!
क्या ऐसा है संभव?

आओ बनाएं मानव को
एक धरा संतान।
मिटा कर सब सीमाओं को,
केवल एक राष्ट्र!
क्या ऐसा है संभव?

आओ मिटाएं दुख को
गरीबी को, बेहाली को।
वसुधा उपजाती इतना,
खिला पाएँ हम सब को!
क्या ऐसा है संभव?

सब जन्मों में श्रेष्ठ
है मानव जन्म।
बार बार मिलता
नहीं मानव जन्म।
इस सत्य को आत्मसात कर लें
क्या ऐसा है संभव?

जो पाया है जन्म श्रेष्ठ
मानव तुझे कुछ कर जाना।
हो स्पष्ट लक्ष्य तुम्हारा
लक्ष्य की ओर बढ़ते जाना।
उस लक्ष्य को हम जान लें
क्या ऐसा है संभव?

मानव कल्याण हो सर्वोपरि
तुम्हारे लक्ष्य का आधार।
यही सत्य जीवन का मर्म
वरना धर्म कर्म सब निराधार।
यही आदर्श शिरोधार्य करें
क्या ऐसा है संभव?

ऐसा भी होता है!

एक मुखौटा बनावटी -
ओढ़ना पड़ता है।
जब तब इंसान को
झूठ बोलना पड़ता है।

एक झूठ छिपाने को,
सौ झूठ बोलना पड़ता है।
न चाहते हुए भी इंसान को
हँसने का नाटक करना पड़ता है।

रुदन को छिपा हृदय में
औरों संग खिलखिलाना पड़ता है।
जो नहीं चाहता इंसान
ऐसा बहुत कुछ करना पड़ता है।

मजबूर है क्या इतना इंसान
सत्य को भी छिपाना पड़ता है?
इंसान को इंसान से
वास्तविकता को छिपाना पड़ता है।

रिश्ते नातों की भूल अहमियत
झूठा नाता भी जोड़ना पड़ता है।
अपने अंदर इंसानियत न पा
खुद से शर्मिंदा होना पड़ता है।

शून्य : एक शाश्वत सत्य?

शून्य में झांका?
देखा!
क्या है उसके अंदर?
शून्य सिर्फ शून्य नही है!
शून्य है -
उद्गम सृष्टि का।
शून्य है -
अंतरिक्ष,
जो विस्तारित है
अंतहीन अनंत
शून्य है -
स्रोत अनंत का।
शून्य
जिससे उद्भव
खगोल, ब्रम्हांड
नक्षत्र, ग्रह, तारामंडल।
शून्य से उद्भासित
सब कुछ,
शून्य में ही
विलय सब का।
क्या शून्य ही
एक सत्य -
शाश्वत सत्य?

जड़–मानव

कुछ भी चेतन नहीं
सब जड़ है
यह धरा, यह आकाश,
यह सृष्टि, यह प्राणी
यहाँ तक कि मानव भी।

सब गूंजता शोर है
कारखानों की चिल्लाहट
गाड़ियों की पों पों
मशीनों की खड़खड़ाहट है
चारों ओर वायु-ध्वनि-जल प्रदूषण है।

मानव बन गया मशीन है
कारखानों में, फैक्ट्रियों में,
सड़कों पर, चौराहों पर
हर तरफ मानव-मशीने हैं
सब जड़ है अचेतन है।

भाव और संवेदना क्या
दर्द भी महसूस नहीं होता
धन, वैभव, औद्योगिक प्रसार
क्रूरता, आतंक, शत्रु संहार
इसी शून्य में अरबों मानव-मशीनें।

आरूढ के भंडार
अणु शस्त्रागार
विषैली गैसों के अनुप्रयोग
दूषित समुद्र, धरती, आकाश
इसी में जड़-बुद्धि अचेत-मानव।

आधुनिक हिंदी कविता

आधुनिक हिंदी कविता की
दुर्गति पर होकर दुखी
महादेवी वर्मा जी ने -
सम्मेलन आयोजित करवाया,
अन्य छायावादी कवियों को
ससम्मान बुलवाया।
भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग के
कवियों को भी आमंत्रण
सादर भिजवाया।
प्रगतिवादी युग-कवियों को
सप्रेम देवी ने बुलवाया।
और इस संगोष्ठी के उद्घाटन
के लिए भारतेन्दु जी से आग्रह किया।
हरिश्चंद्र जी ने जिसे
द्विवेदी जी पर टाल दिया -
जिसका सभी कवियों ने
करतल ध्वनि से स्वागत किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने
औपचारिकताएं निभाते हुए
"कविता क्या है" से शुरू किया -
"छन्द-बद्ध और पद्ययुक्त कविता,
भावों की होती जिसमें सरसता।
भाषा की समृद्धि एवं सौंदर्यानुभूति
आनंदयुक्त एवं रसानुभूति।

लय युक्त, अलंकृत, रसमय कविता
कहाँ गयी संदेश वाहिनी कविता?"
भारतेन्दु जी ने दिल की
पीड़ा कुछ यूं जतायी -
"निज भाषा की पीड़ा अबहूँ दिल माँ चुभत है।
इन आधुनिक कवियन की, चेतना भयी लुपत है।"

मैथिली शरण गुप्त तब अने प्रस्तोता -
अंतर का आह्वान वेग से बाहर आया -
"आधुनिक कवि की कविताएँ!
खेल रहीं जन मानस से,
उठती क्षुब्ध सी अहा!
क्यों नहीं यह नर सत्ता"।

प्रसाद जी ने दृष्टि गड़ा,
दिल की व्यथा कह सुनायी -
"चौंक उठी है कविता आज -
कवि के कवित्व पर!
जिसे मुक्त वह छोड़ रहा,
और वह फिसल रही।
हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
स्वयं कविता पुकारती
हे कवि कहाँ हो, हे कवि कहाँ हो?"

निराला जी ने कविता को टूटते बताया-
"यह टूटती कविता!
देखा मैने आधुनिक कवि के हाथों
यह टूटती कविता!
सड़कों पर, चौराहों पर,

कवि सम्मेलनों में टूटती कविता।"
स्वार्थ एवं धनलोलुपता के पाटों
में पिसती हुई कविता"।

प्रकृति के सुकुमार कवि ने
प्रकट किये उद्‌गार यूँ -
"आधुनिक कवि को देखा?
वह कविता जिसमें, उद्‌गार नहीं,
रस, छंद, लय, अलंकार नहीं,
संदेश नहीं, प्रकृति से प्यार नहीं,
अनुभूति नहीं, चिंतन भाव नहीं।
ऐसे कवि को देखा?

राम नरेश त्रिपाठी जी ने
कविता को परिभाषित किया -
"सच्ची कविता वही है, जिससे
तृप्ति कवि की पूर्ण हो।
जन मानस को आधार बनाये,
और उसी की प्रेरक हो।
कवि होता है युग प्रवर्तक,
कविता उसकी प्रेरणा।
किंतु आधुनिक कवि का
इनसे आँखें फेरना।"

कवि की अभिलाषा बतलायी
माखनलाल चतुर्वेदी जी ने -
"चाह नहीं होती कवि को पारितोषिक की,
चाह नहीं होती कवि को प्रसिद्धि की,
बस यही अभिलाषा होती -

सुगन्धियुक्त, पूर्ण विकसित, पुष्परूपी
देवि सरस्वती को अर्पित हों कविताएं उसकी।"

बच्चन जी भी क्यों चुप रहते -
"पूर्व लिखने के कवि,
कविता की पहचान कर ले!
पुस्तकों में नहीं छापी गयी
पहचान इसकी।
न आती कविता औरों की जबानी।
पूर्व बनने के कवि
कवित्व की पहचान कर ले।"

चौंक उठा मैं।
झकझोर कर उठाया किसी ने।
संगोष्ठी न आयोजित थी कहीं,
बड़बड़ा रहा था केवल मैं।
लेटा हुआ सोचने लगा मैं -
महादेवी जी ने वास्तव में
इसका आयोजन किया था!
या वे भी देख रहीं थीं
स्वप्न! मेरी तरह?
स्वर्ग में?

कविता

सरल-सरस-भाषा,
सरिता सा प्रवाह,
भाव समेटे अनेक,
दर्द छुपाए अनेक!
होती वह कविता।

बदली घुमड़ बरसे,
रिमझिम बारिश की फुहार,
समाये अपने में,
ज्यों दिल का गुबार!
होती वह कविता।

पढ़े जो कोई उसको,
खुद को पाये उसमें,
महसूस करे दर्द,
भाव ऐसे व्यक्त हुए!
होती वह कविता।

निहित हो संदेश,
सम्मिलित हो विवेक,
दर्पण बने समाज का,
सुषुप्त जगाए चेतना!
होती वह कविता।

पाठक और श्रोता के,
मर्म को करे स्पर्श,
श्याम ही नही श्वेत केशों को
प्रदान करे हर्ष,
अधरों पर स्मित हास, उर में वेदना!
होती वह कविता।

टीस

देखता हूँ टकटकी लगाए मैं आसमां की तरफ,
खोजता हूँ मिल जाए, कहीं एक बादल का टुकड़ा,
जो उड़ता हुआ आ जाए, मेरे खेतों की तरफ,
औ उमड़-घुमड़ बरसाये पानी की रिमझिम धारा।

सूनी आँखे चमक उठें, बदली के आगमन पर
मयूर मन मेरा नाच उठे, क्षितिज पर बदली देख कर।
मेरे खेत की प्यासी मिट्टी, अभिसिंचित, करे इंतजार,
जल की बूंदों की, हो कर बेकरार।

उमड़-घुमड़ करती बदली, कभी कर्ण भेदी तुमुलनाद,
कभी बदली का वक्ष-वसन चीरती बिजली का आल्हाद,
मन में उठती आशंका, आज कहीं सौदामिनी गिरेगी!
शंका पर डंका बजता, मेरे खेतों की प्यास बुझेगी।

गरजे लेकिन बरसे नहीं, उड़े बदली संदेश लिये,
पुलकित मन हो उदास पुकारे-लौट आ स्वाती-बूंद पिये
सूनी आँखों देखता दूर तक, बदली को ओझल होते
औऱ चिरप्रतीक्षित आकांक्षा को दिवा स्वप्न सा टूटते।

इक टीस सी उठती मन में -
'बदली क्यों रूठी मुझसे!
क्या प्यार मेरा अपूर्ण था
यों उसे लगाव किसी गैर से?'

अनंत प्रेम

सागर सिकता में लिपटी,
किसी चित्रकार की कला हो तुम!
हवा को आँचल बनाये लहराती,
किसी गीत का सरगम हो तुम!

निचुड़ते घनकेश बादलों से,
किसी कवि की सुंदर प्रेरणा हो तुम!
कोकिल कण्ठ मलिका,
किसी साज का सुर हो तुम!

चांद तारों से जड़ी,
किसी शिल्पी की उत्कृष्ट कृति हो तुम!
अनुपम सौंदर्य को समेटे,
मेरे अनंत प्रेम का स्रोत हो तुम!

रूहानी

हवा के हल्के - हल्के झोंके
दरवाजे पर धीमी - धीमी
दस्तक सी देते हैं,
मानों मेरा प्यार मुझे
जगा रहा है -
कान में हौले-हौले फुसफुसा के।

बंद किवाड़ के पटों को,
मैं खोलता हूँ - आहिस्ता आहिस्ता,
तन मन से लिपट जाती है,
समा जाती है ये हवा, मानो -
चिरकाल का विछोह,
आज खत्म हुआ है।
मेरा अंग-अंग भर उठता है,
रूहानी ताजगी से!

प्रीत

हे अनिंद्य सुंदरी
तुम्हारी चितवन से
मेरे हृदय-वीणा के तार
झंकृत हो उठे हैं।
इन्हें तुम सुर दे दो!

अब तक अलापते अनर्गल
इस वीणा के तार
आज मचल उठे हैं,
तुम्हारे वाद्य प्रवीण सुकोमल
हाथों की चंचल उंगलियों
के स्पर्श को।
इन्हें तुम राग दे दो!

हे अनिंद्य सुंदरी
जब से तुम्हे देखा
मेरा कवि मन मचल उठा है
वह कविता भूल गया है।
उसे तुम गीत दे दो!

तुम्हारी निर्दोष चितवन
बयार, नीर, उर्वरा हुई,
प्रेम-प्रौद्य बन चुका है
प्रस्फुटित हो बीज वह।
इसे तुम सींच दो!

तुम्हारे प्रेम में आकण्ठ डूबा
यह दिल मदमत्त
सर्वस्व समर्पण को उन्मत्त।
इसे तुम प्रीत दे दो!

पिया न आये

सांझ घिर आयी,
आलोक भी छिप रहा,
संध्या की अस्तोन्मुख किरनें
भावातिरेक में -
अश्रु निर्झर बह चले।
कि, पिया न आये!

बैलों की ग्रीवा में सजी
घण्टिया भी बज उठीं,
कि धूल भरे वसन लिये
मनमोहन लौट पड़े।

पच्छम में यह हलचल कैसी
धरा से नभ तक धूल कैसी?
गोधूलि बेला में झींगुर गान मध्य
चरवाहे भी लौट पड़े।

खग गगन में चहक रहे,
नीड़-की ओर उड़ान भर रहे
रीता मन मेरा कंपित होये
कि, पिया न आये!

घिर आयी निशि,
तम हुआ चहुँ ओर

द्वार-द्वार दीप जल उठे,
जगमग-जगमग कर उठे।

मंदिर के घंटे घड़ियाल बज उठे,
आरती का हुआ समय,
ढोल-मंजीरे बज उठे,
स्तुतियों के स्वर सज उठे।

निशा का गहराता अंधेरा
तम में डूबा मन मेरा
रह-रह उद्विग्न हो उठे -
कि, पिया न आये!

चंद्र-किरण-हीन-तिमिर
दीप सब बुझ गये
रजनी का मध्य प्रहर
तात सब सो गये।

जग में नि:स्वर शांति व्याप्त
हतभागिनी मैं, पाऊँ संताप,
नयन मेरे मुझे रुलाएँ,
कि, पिया न आये!

क्या हो तुम!

जाने तुम क्या हो -
पुर्वा बयार हो,
नदिया की धार हो,
या ज्योत्सना का प्यार हो तुम!

संगीत का साज हो,
वीणा की तान हो,
या गीत का भाव हो तुम!

कस्तूरी की महक हो,
ऋतु बसंत हो,
या आकाश दिगदिगंत हो तुम!

सुधा का प्याला हो,
छलकता यौवन की हाला हो,
या हवा का गीत हो तुम!

जाने तुम क्या हो -
शोख कली हो,
गुलाब की पंखुड़ी हो,
या सावन की झड़ी हो तुम!

तुम पास तो आओ

तुम पास तो आओ जरा,
दिल उदास है आज,
अंधेरों में घिरा है,
एक दीप तो जला जाओ।

नयनों में चंचलता नहीं,
अधरों पे मुस्कान नहीं,
जीवन में बहार नहीं,
कोई फूल तो खिला जाओ।

तन में प्राण नहीं,
मन में भाव नहीं,
सांसों में महक नहीं,
देहगंध बिखरा जाओ।

पावों में गति नहीं,
हाथों मे हलचल नहीं,
हृदय में धड़कन नहीं,
आकर सीने से लग जाओ।

प्रियतम

रातभर सोयी नहीं,
सपनों में खोयी रही,
निर्निमेष प्रियतम के ख्यालों
संग मैं खोयी रही।

लावण्यमय मोहित रूप को
रातभर निरखती रही,
सरल, सहज, सलोने मीत
को अर्पित होती रही।

मधु यौवन रस
मदिरा सा पिलाते रहे,
प्राण-हृदय मेरे
मुझे नींद से जगाते रहे।

मनभावन प्रियतम
सपनों में आते रहे,
पलकों से सौंदर्य मद
नयनों का पिलाते रहे।

कपोलों की लालिमा
चुम्बनों से चुराते रहे,
अधरों पर अरुणाई
अधरों से सजाते रहे।

उद्वेलित यौवन भार
आलिंगन में अलसाते रहे,
पावन, स्निग्ध, मधुर प्यार
सारी रात छलकाते रहे।

तन पर मेरे चाँदनी से
सोलह सिंगार करते रहे,
मनभावन प्रियतम
सपनों में आते रहे।

यौवन

सोने की थाली में यदि
मैं चाँदनी भर पाऊँ,
प्रेम रूप पर तेरे गोरी,
भर-भर हाथ लुटाऊँ।

हवा में घुल पाऊँ यदि
तेरी साँसों में बस जाऊँ,
धड़कन हृदय की,
पक्ष के स्पंदन मैं बन जाऊँ।

अलसाया सा यौवन तेरा,
अंग-अंग में तरुणाई,
भर लूँ मैं बाहें फैला,
बनकर तेरी ही अंगड़ाई।

चंदन बन यदि तन से लिपटूँ
महकूँ कुआँरे बदन सा,
मदिरा बन मैं छलकूँ
अलसाये नयनों से प्रीत सा।

स्वच्छंद-सुवासित-अलकों में
वेणी बन गुंथ जाऊँ,
बन नागिन सी लहराती चोटी
कटि-स्पर्श सुख पाऊँ।

अरुण अधर कोमल-कपोल
बन चंद्र किरन चूम पाऊँ,
सेज मखमली बन
तेरे तन से लिपट जाऊँ।

दर्पण देख लिया होता!

न कद्दर की तूने मेरी
कोई बात नहीं,
मेरे प्यार को आज़मा के
देख लिया होता!

मेरे प्यार के आमंत्रण को
हंसी में तूने उड़ाया,
न जाना था 'प्यार क्या है?'
हमसे पूछ लिया होता!

कभी आँखों में झाँक कर
देख लिया होता,
या दिल मे उतर कर
महसूस किया होता!

धड़कनों से मेरी
तूने पूछ लिया होता,
या दर्पण में खुद को
कभी देख लिया होता!